अध्याय-18

मोक्षसंन्यासयोग-नामक 18वाँ अ0।।

[1-12 त्याग का विषय।]

अर्जुन उवाचः-सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वं इच्छामि वेदितुं। त्यागस्य च हृषीकेश पृथक् केशिनिषूदन।। 18/1

महाबाहो हृषीकेश	हे {अष्टमूर्तिरूप} महाबाहु शिवबाबा! हे {मन सहित ज्ञान और कर्म-} इन्द्रियों के स्वामी!
केशिनिषूदन संन्यासस्य च	हे केशिहन्ता! {मनसा संकल्प सहित समुचित कर्मों के} पूरे त्यागरूप संन्यास का और
त्यागस्य तत्त्वं पृथक् वेदितुं इच्छामि	{तन-धन-सम्बंधादि के} त्याग का तत्त्व अलग-2 जानना चाहता हूँ।

श्रीभगवानुवाचः-काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः। सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुः त्यागं विचक्षणाः।। 18/2

कवयः काम्यानां कर्मणां न्यासं	{कुछ} विद्वान {द्वैतवादी द्वापुर से सभी संसारी} कामना वाले कर्मों के त्याग को
संन्यासं विदुः विचक्षणाः	{सम्पूर्ण त्याग रूप} संन्यास समझते हैं, {जबकि पु. संगमी} विशेष दृष्टा {स्वर्गीय संगठन हेतु और}
सर्वकर्मफलत्यागं त्यागं प्राहुः	{अविनाशी रुद्रयज्ञ-अर्थ संसार के} सभी कर्मफलों {की प्राप्ति} के त्याग को त्याग बताते हैं।

त्याज्यं दोषवत् इति एके कर्म प्राहुः मनीषिणः। यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं इति च अपरे।। 18/3

एके मनीषिणः कर्म दोषवत्	कुछेक बुद्धिमान् {द्वापुर से नरनिर्मित कामेन्द्रिय का नारकीय} कर्म {महा} पाप-जैसा
त्याज्यं इति प्राहुः च अपरे	त्यागने योग्य है, ऐसे कहते और दूसरों का मत है {कि अविनाशी अश्वमेध रूद्र ज्ञान-}
यज्ञदानतपःकर्म त्याज्यं न	यज्ञ{सेवा}, दान {वा आत्मस्मृति रूप} तप {पु.संगम में कभी भी} त्यागने योग्य नहीं हैं।

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम। त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः।। 18/4

भरतसत्तम तत्र त्यागे मे निश्चयं	हे भरतकुलश्रेष्ठ! उस त्याग के बारे में {विश्व-कल्याणार्थ} मेरा {अटल} निश्चय
शृणु हि पुरुषव्याघ्र त्यागः	सुन; क्योंकि {इस संसार रूपी जंगल में} हे मानवों में {नर} सिंहस्वरूप! {पु. संगम की शूटिंग में} त्याग
त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः	तीन तरह से कहा गया है। {मानवीय सृष्टिवृक्ष के बीज 1 मुखी रुद्राक्ष/महारुद्र की}

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यं एव तत्। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणां।। 18/5

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं	{रुद्र ज्ञान} यज्ञसेवा, दान, {आत्मस्मृति का} तप-कर्म {पु.संगम में कभी} त्याज्य नहीं,
तत् कार्यं एव यज्ञः दानञ्च	उसे {अनिवार्यतः} करना ही चाहिए; {क्योंकि अविनाशी} यज्ञसेवा, दान और {मानसिक त्याग में}
तपः एव मनीषिणां पावनानि	{आत्म-स्टार की स्मृति रूप} तपस्या ही बुद्धिमानों को {संसार में सदा} पवित्र बनाती हैं।

एतानि अपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च। कर्तव्यानि इति मे पार्थ निश्चितं मतं उत्तमं।। 18/6

पार्थ त्वेतानि कर्माण्यपि	हे पृथ्वीपति! किंतु इन {तीनों ही पु. संगमयुगी अलौकिक यज्ञ-दान-तपयुक्त} कर्मों को भी
संगं च फलानि त्यक्त्वा	{तन-धन-धामादि की} आसक्ति और {कर्म-} •फलों {की इच्छा} को त्यागकर {विश्व भलाई के अर्पणभाव से}
कर्तव्यानि इति मे निश्चितं उत्तमं मतं	करना चाहिए, ऐसा मेरा {सर्वस्व त्याग रूप संन्यास का} निश्चित, उत्तम मत है।

•(यज्ञ) सर्विस से यहाँ सुख लेंगे तो वहाँ (स्वर्ग) का सुख कम हो जावेगा। {क्योंकि सम्पूर्ण त्याग नहीं किया} (मु.ता.16.1.67 पृ.3 आदि)

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो न उपपद्यते। मोहात् तस्य परित्यागः तामसः परिकीर्तितः।। 18/7

तु नियतस्य कर्मणः संन्यासः	परंतु नियत हुए {नैसर्गिक खान-पान-उत्सृजनादि अनिवार्य} कर्म का {सर्वथा} परित्याग
नोपपद्यते मोहात्तस्य	अनुचित है। {क्योंकि ऐसी जबरियन की गई} मूर्खता से {हठपूर्वक इन्द्रिय-उत्सादनार्थ} उस {दैहिक आवेगी} के
परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः	{कर्म का} सर्वथा त्याग {देह और आत्मपीड़ादायी कलियुगी} तामसी त्याग कहलाता है।

दुःखं इति एव यत् कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत्। स कृत्वा राजसं त्यागं न एव त्यागफलं लभेत्।। 18/8

यत् कर्म दुःखं एव इति काय	जो {जनहित का} कर्म दुःख रूप ही है ऐसा समझ शारीरिक, {मानसिक या किसी के मोह में}
क्लेशभयात्त्यजेत् स राजसं	{होने वाले} कष्ट के भय से त्यागता है, वह {स्वार्थ-पूर्ति करने वाली लालसा वाला} राजसी
त्यागं कृत्वा त्यागफलमेव न लभेत्	त्याग करने के बाद, {अनात्मभावी/देहभावी जन} त्याग का फल ही नहीं पाता।

कार्यं इति एव यत् कर्म नियतं क्रियते अर्जुन। सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः।। 18/9

अर्जुन कार्यमेव इति यत्कर्म	हे अर्जुन! {विश्व-कल्याणी नवनिर्माण-भाव से} करने योग्य ही है- ऐसे जो कर्म {अपनी}
संगं च फलं त्यक्त्वा नियतं	{देह,किसी व्यक्ति वा वस्तुगत} आसक्ति और फलेच्छा को त्यागकर नियमपूर्वक
क्रियते सैव सात्त्विकस्त्यागः मतः	किया जाता है, वही {अव्वल नं. सतयुगी सुखदायी} सात्विक त्याग माना जाता है।

न द्वेष्टि अकुशलं कर्म कुशले न अनुषज्जते। त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः।। 18/10

त्यागी सत्त्वसमाविष्टः मेधावी	{अविनाशी रुद्र की यज्ञसेवार्थ कर्मफल का} त्यागी, सात्त्विक स्वभाव का बुद्धिमान्
छिन्नसंशयः अकुशलं कर्म द्वेष्टि न	{ईश्वर में} संशयहीन {और} कुशलता रहित {अप्रिय और अनिच्छित} कर्म से द्वेषी नहीं
कुशले न अनुषज्जते	{एवं दीर्घकालीन अभ्यासी होने से} कुशलतायुक्त {प्रिय} कर्म में {अनासक्त होने से} अनुराग नहीं रखता;

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माणि अशेषतः। यः तु कर्मफलत्यागी स त्यागी इति अभिधीयते।। 18/11

हि देहभृता कर्माण्यशेषतः त्यक्तुं	क्योंकि {मुझ विदेही शिवज्योति की तरह} देहधारी कर्मों को पूरा त्यागने में
शक्यं न तु यः कर्मफलत्यागी	समर्थ नहीं है; किंतु जो {देहधारी विश्वकल्याणार्थ} कर्मफल का {सदाकाल} त्यागी है,
स त्यागी इत्यभिधीयते	वह {गीता 5-25 का 'सर्व भूतहिते रताः' ही यथार्थ में} त्यागी है- ऐसे कहा जाता है।

अनिष्टं इष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलं। भवति अत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित्।। 18/12

अत्यागिनां कर्मणोऽनिष्टं	{कर्म का फल पाने की इच्छा का} त्याग न करने वालों को कर्म का {बिगड़ा हुआ} अप्रिय

इष्टश्च मिश्रं त्रिविधं फलं प्रेत्य	{अनचाहा,} प्रिय व मिश्रित 3 प्रकार का फल {इस दुनिया में देह से} मरकर {आगे जन्म में}
भवति तु संन्यासिनां क्वचिन्न	{अवश्य} प्राप्त होता है; किन्तु {मोक्षभावी} संन्यासियों को कभी भी {प्राप्त} नहीं होता।

[13-18 कर्मों के होने में सांख्यसिद्धान्त]

पञ्च एतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे। साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणां।। 18/13

महाबाहो सर्वकर्मणां सिद्धये	हे सहयोगियों रूपी दीर्घबाहु! {अच्छे-बुरे माने गए} सारे कर्मों की {सम्पूर्ण} सिद्धि के लिए
कृतान्ते मे सांख्ये एतानि	कृत कर्मों के अंतकर्ता मेरे {आत्मभाव वाले} संपूर्ण व्याख्या सहित सांख्ययोग में इन
पंच प्रोक्तानि कारणानि निबोध	पाँच कहे गए कारणों को {इस पु. संगम में विस्तार पूर्वक अवश्य} समझ ले।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधं। विविधाश्च पृथक् चेष्टाः दैवं चैव अत्र पञ्चमं।। 18/14

अत्र अधिष्ठानं तथा कर्ता	यहाँ {मानसी शूटिंगकाल में कर्म का} आधाररूप {विनाशी देह}, उसी तरह कर्ता
च पृथग्विधं करणं च विविधाः	{स्वयं} और विविध प्रकार की {ज्ञान और कर्म-} इन्द्रियाँ और {इन्द्रियों की} विविध
पृथक् चेष्टाः च पंचमं दैवं एव	{सुख और दुःखदाई} अलग-2 चेष्टाएँ और पाँचवाँ {अदृष्ट} भाग्य ही {मुख्य कारण हैं।}

शरीरवाङ्मनोभिः यत् कर्म प्रारभते नरः। न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्च एते तस्य हेतवः।। 18/15

शरीरवाङ्मनोभिः न्याय्यं वा	शरीर, वाणी और मन द्वारा {सच्ची गीता के} न्याय से अथवा {नरनिर्मित मनमाने}
विपरीतं यत् कर्म नरः प्रारभते	अन्यायपूर्वक जो {अच्छे-बुरे} कर्म {स्वर्ग+नरक की चतुर्युगी में भी} मनुष्य करता है,
तस्य ते पंच हेतवः	उसके ये सभी पाँचों कारण {कपिलमुनि की सम्पूर्ण व्याख्या साङ्ख्य में कहे} हैं।

तत्र एवं सति कर्तारं आत्मानं केवलं तु यः। पश्यति अकृतबुद्धित्वात् न स पश्यति दुर्मतिः।। 18/16

तत्रैवं सति योऽकृत-	वहाँ {पुरुषोत्तमी शूटिंग में} ऐसे {पांचो ही कारण} होने पर {भी} जो अधकचरी
बुद्धित्वात् केवलं आत्मानं कर्तारं	बुद्धि के कारण {विदेशियों के नीच संग से प्रभावित} केवल अपने को करने वाला
पश्यति स दुर्मतिः न पश्यति	देखता है, वह दुष्टबुद्धि {ठीक} नहीं देखता। {संग के रंग की बलिहारी है।}

यस्य न अहङ्कृतो भावो बुद्धिः यस्य न लिप्यते। हत्वा अपि स इमान् लोकान् न हन्ति न निबध्यते।। 18/17

यस्याहंकृतः भावः न यस्य बुद्धिः	जिसका अहंकार भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि {1 प्रभु सिवा कहीं भी संसार में}
लिप्यते न स इमाँन् लोकान्	लिप्त नहीं होती, वह इन {देहासक्त नास्तिक} लोगों को {कल्पान्त कालीन महा}
हत्वाऽपि न हन्ति न निबध्यते	{विनाश में} मारकर• भी नहीं मारता {और} न बंधायमान होता है। {जैसे- महादेव शंकर}

•{बाप (शिव) तो विनाश उस (शंकर) से कराते हैं जिस पर कोई पाप न लगे। (मु. ता.11.5.90 पृ.1 मध्य) (अकर्म का अर्थ जाना ना!)

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना। करणं कर्म कर्ता इति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः।। 18/18

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा	{थोड़ा या सारा} ज्ञान, जानने योग्य {अच्छी या बुरी} बात, अच्छा समझदार-{ये} 3 प्रकार के
कर्मचोदना करणं कर्म कर्ता	कर्म-प्रेरक हैं। {इन्द्रियादि} साधन,कर्म {तथा अच्छा-बुरा कर्म-} कर्ता {ज्योतिबिंदु आत्मा}
इति त्रिविधः कर्मसंग्रहः	- ऐसे 3 प्रकार का {पु. संगमी शूटिंगकाल में अपना ही किया हुआ} कर्मों का संग्रह है।

[19-40 तीनों गुणों के अनुसार ज्ञान,कर्म,कर्ता,बुद्धि,धृति और सुख के पृथक्-2 भेद।]

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधा एव गुणभेदतः। प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावत् शृणु तानि अपि।। 18/19

गुणसंख्याने ज्ञानञ्च कर्म च कर्ता गुणभेदतः	गुणों के ज्ञान में ज्ञान कर्म तथा करने वाला, गुणों के भेद से {सात्विक, राजसी}
त्रिधैव प्रोच्यते तान्यपि यथावत् शृणु	{या तामसी} 3 प्रकार के ही कहे जाते हैं। उन्हें भी यथार्थ रीति {मेरे से} सुन।

सर्वभूतेषु येन एकं भावं अव्ययं ईक्षते। अविभक्तं विभक्तेषु तत् ज्ञानं विद्धि सात्त्विकं।। 18/20

येन विभक्तेषु सर्वभूतेषु	जिस {स्वर्गीय शूटिंग के अद्वैतवादी ज्ञान} द्वारा {आकृति से} अलग-2 हुए सब प्राणियों में
अविभक्तमव्ययमेकं भावं	अखण्ड-अविनाशी एक {परमात्मा की पु.संगम में संग्रहित योगऊर्जा रूप} आत्मभाव को
ईक्षते तत् सात्त्विकं ज्ञानं विद्धि	देखता है, उसे {साक्षात् ईश्वरीय} सात्विक ज्ञान {का अविनाशी सार ही} जान;

पृथक्त्वेन तु यत् ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान्। वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तत् ज्ञानं विद्धि राजसं।। 18/21

तु यत् ज्ञानं सर्वेषु भूतेषु	किंतु जो {द्वैतवादी द्वापुर-कलियुगी} ज्ञान सब प्राणियों में {भौतिक 23 तत्वों की दैहिक}
पृथक्त्वेन नानाभावान् पृथक्	भिन्नता द्वारा {नर-निर्मित जाति-धर्म-भाषादि के} नाना भावों में अलगाववादी
विधान् वेत्ति तत् ज्ञानं राजसं विद्धि	{पराई} विधि से जाने, उस {द्वैतवादी दैत्यों के हिंसक} ज्ञान को रजोगुणी जान;

यत् तु कृत्स्नवत् एकस्मिन् कार्ये सक्तं अहैतुकं। अतत्त्वार्थवत् अल्पं च तत् तामसं उदाहृतं।। 18/22

तु यत् एकस्मिन् कार्ये अहैतुकं	किंतु जो एक ही {बेहद रंगमंचीय वसुधैव कुटुंब के} कार्य में बिना कारण {जड़ देहाकृति में}
सक्तं कृत्स्नवत् अतत्त्वार्थवत्	{यों ही} आसक्त हुआ 'सब-कुछ यही {हमारा संप्रदाय} है'- {ऐसी संकुचित} तत्वहीन समान
अल्पं तत्तामसं उदाहृतं	अल्प {बाल} बुद्धि है, वह {पापी कलियुग का फूट डालने वाला} तामसी ज्ञान कहा गया है।

{जैसे कि आज एक शिवज्योति परमपिता+हीरो पार्टधारी परमात्मा जगत्पिता के बच्चे आत्मा-2 भाई-2 के भ्रातृभाव को सर्वथा भूलकर, अपने-2 धर्म-मठ-पंथ-सम्प्रदाय को ही अपनी-2 खण्ड-2 बनी हुई संकुचित अल्पबुद्धि से सम्पूर्ण मान बैठे हैं।}

नियतं सङ्गरहितं अरागद्वेषतः कृतं। अफलप्रेप्सुना कर्म यत् तत् सात्त्विकं उच्यते।। 18/23

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः	नित्य-नियमपूर्वक, आसक्तिहीन, {कोई और कैसे भी संप्रदाय से} रागद्वेष के बिना {और}
अफलप्रेप्सुना यत्कर्म	{उससे पाने की} फलेच्छा रहित व्यक्ति से जो {रुद्रज्ञान यज्ञ-सेवार्थ• गीता शास्त्रोक्त} कर्म
कृतं तत् सात्त्विकं उच्यते	किया गया, वह {सदाकाल स्वर्ग-समान सुखदायी} सात्विक कहा जाता है; {गीता•-3/9}

यत् तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः। क्रियते बहुलायासं तत् राजसं उदाहृतं।। 18/24

तु कामेप्सुना साहंकारेण	किंतु {स्वार्थ में दैहिक फल की} कामना वाले व्यक्ति द्वारा {अपने ही विनाशी} देह-अहंकार पूर्वक
वा बहुलायासं यत्कर्म पुनः	अथवा बड़े परिश्रमपूर्वक {किसी लगाव के कारण} जो कार्य बार-2 {अत्यंत कठिनाई से}
क्रियते तत् राजसमुदाहृतं	किया जाता है, वह {द्वैतवादी कर्मघमंडी विदेशी• या विधर्मियों का} राजसी{कर्म} कहा है।

•{ये खास कर्मेन्द्रियों से हिंसक, द्वैतवादी द्वापुर में अवतरित विदेशी-विधर्मी दैत्य-आत्माएँ ही नरनिर्मित नरक के मानवकृत इतिहास में 2500 वर्ष से ही इस दुनियाँ में आकर भ्रष्ट कर्मेन्द्रियों की दैहिक हिंसा से नरक बनाते हुए खुद भी गिरती रहती हैं।}

अनुबन्धं क्षयं हिंसां अनवेक्ष्य च पौरुषं। मोहात् आरभ्यते कर्म यत् तत् तामसं उच्यते।। 18/25

अनुबंधं हिंसां क्षयं च पौरुषं	{ऐटमिक महाविनाश जैसे कर्म से होने वाले} परिणाम, हिंसा, हानि और {अपने} सामर्थ्य को
अनवेक्ष्य मोहात् यदारभ्यते	न देखकर मूर्खता से/मोहपूर्वक जो {भी अदूर दृष्टि से सांसारिक} कर्म आरम्भ किया जाता है,
तत्तामसं कर्म उच्यते	वह {कल्पान्त कालीन कलियुगान्त का सबका असहनीय दुखदायी} तामसी कर्म कहा जाता है।

मुक्तसङ्गः अनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः। सिद्ध्यसिद्ध्योः निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।। 18/26

मुक्तसंगः अनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः	{सभी से} आसक्तिहीन, देहभाव से निरहंकारी, धैर्य और उत्साह से भरपूर,
सिद्ध्यसिद्ध्योः निर्विकारः सात्त्विकः कर्ता उच्यते	सिद्धि-असिद्धि में निर्विकारी, सात्विक कर्ता कहा जाता है।

रागी कर्मफलप्रेप्सुः लुब्धः हिंसात्मकः अशुचिः। हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।। 18/27

रागी अशुचिः कर्मफल-	{सांसारिक विषय-भोग में} आसक्त, अपवित्र {मूत-पलीती, इस जन्म में ही सांसारिक} कर्मफल का
प्रेप्सुः हिंसात्मकः लुब्धः हर्षशोक-	इच्छुक, {तन-धनादि-बल से} हिंसात्मक, {मुस्लिमों जैसा} लोभी, हर्ष {और} शोक से

अन्वित: राजस: कर्ता परिकीर्तित:	भरपूर, {द्वैतवादी द्वापुर-कलियुगी,रजोधर्मप्रिय} राजसी कार्यकर्ता कहा जाता है।

अयुक्त: प्राकृत: स्तब्ध: शठो नैष्कृतिक: अलस:। विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।। 18/28

प्राकृत: अयुक्त: शठ: स्तब्ध: नैष्कृतिक: अलस:	{गाँवडी जैसा} असभ्य, अयोगी, धोखेबाज, हठी, नीच {चेतनाहीन जैसा} आलसी,
विषादी च दीर्घसूत्री तामस कर्ता उच्यते	दु:खीभाव का & {काम को टालने वाला} दीर्घसूत्री, तामसी कर्ता कहा जाता है।

बुद्धे: भेदं धृतेश्चैव गुणत: त्रिविधं शृणु। प्रोच्यमानं अशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय।। 18/29

धनंजय गुणत: धृते: च बुद्धे:	हे ज्ञान-धनजेता! {अपने-2 स्वाभाविक} गुणानुसार धारणा एवं {हर व्यक्ति की} बुद्धि के
त्रिविधं भेदमेव शृणु अशेषेण	तीन प्रकार के {प्रकृतिकृत} भेद को भी सुन। {मैं उन्हें} पूरी तरह {सम्पूर्ण व्याख्या सहित}
पृथक्त्वेन प्रोच्यमानं	{सत्त्वादि तीनों गुणों को} अनेक रूपों से {विस्तारपूर्वक अकेले तेरे को ही} अलग-2 बता रहा हूँ।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये। बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धि: सा पार्थ सात्त्विकी।। 18/30

पार्थ या बुद्धि: प्रवृत्तिं च निवृत्तिं	हे पृथ्वीपति! जो बुद्धि {समाज,देश और काल-अनुसार} कर्मों में लगने और न लगने,
कार्याकार्ये भयाभये च	कृतकार्य वा अकार्य को, भय और निर्भयता को तथा {दैहिक, दैविक और भौतिक दुखों के}
बंधञ्च मोक्षं वेत्ति सा सात्त्विकी	बंधन वा मुक्ति को {सच्चीगीता एडवांस ज्ञान द्वारा} जानती है- वह सत्वगुणी है।

यया धर्मं अधर्मं च कार्यं च अकार्यं एव च। अयथावत् प्रजानाति बुद्धि: सा पार्थ राजसी।। 18/31

पार्थ यया धर्मं च अधर्मं च कार्यं	हे पृथ्वीराज! जिससे धर्म और अधर्म को और {समाज,देश और कालक्रम से} कर्तव्य
चाकार्यं एव अयथावत्	अथवा अकर्तव्य को भी {कोई व्यक्ति या पदार्थ की आसक्ति के कारण} गलत ढंग से
प्रजानाति सा राजसी बुद्धि:	{ही} जान पाती है, वह {द्वैतवादी द्वापर से विधर्मी और विदेशी दैत्यों की} राजसी बुद्धि है।

अधर्मं धर्मं इति या मन्यते तमसा आवृता। सर्वार्थान् विपरीतान् च बुद्धि: सा पार्थ तामसी।। 18/32

पार्थ तमसावृता या अधर्मं	हे पृथ्वीराज! {पापमय कलियुगी} तमोगुण से ढकी हुई जो बुद्धि {विदेशी-विधर्मियों के} अधर्म को
धर्मं च सर्वार्थान् विपरीतान्	{अति देहाहंकार के कारण} धर्म और सारे {विश्व-कल्याणकारी} अर्थों को विपरीत रूप से
मन्यते सा तामसी बुद्धि:	मानती है, वह {सदा अनाचार-व्यभिचार के दोष से भरपूर सबके लिए दुखदाई} तमोगुणी बुद्धि है।

धृत्या यया धारयते मन:प्राणेन्द्रियक्रिया:। योगेन अव्यभिचारिण्या धृति: सा पार्थ सात्त्विकी।। 18/33

पार्थ योगेन ययाव्यभिचारिण्या	हे अर्जुन! {परमपिता शिव+हीरोपार्टधारी एकलिंग से} योग द्वारा जिस अव्यभिचारी
धृत्या मन: प्राणेन्द्रियक्रिया:	धारणाशक्ति से {अचल बने} मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाएँ {नित्य-नियम & अभ्यासपूर्वक}
धारयते सा सात्त्विकी धृति:	{विनाशी दुनियाँ के वैराग पूर्वक} धारण की जाती है, वह {दिवात्मा की} सात्विकी धारणा शक्ति है;

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयते अर्जुन। प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृति: सा पार्थ राजसी।। 18/34

तु अर्जुन यया धृत्या	{किंतु हे धनी} अर्जुन! जिस धारणा शक्ति से {नरनिर्मित इस नरक के हिंसक विधर्मियों के}
धर्मकामार्थान् प्रसंगेन फलाकांक्षी	धर्म, धन और कामनाओं को तीव्र आसक्तिपूर्वक {भ्रष्टेइन्द्रिय-सुख पाने का} फलाकांक्षी
धारयते पार्थ सा राजसी धृति:	{मन से} धारण करता है, हे पृथ्वीराज! वह {द्वैतवादियों की द्वापुर से} राजसी धारणा है।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदं एव च। न विमुञ्चति दुर्मेधा धृति: सा पार्थ तामसी।। 18/35

पार्थ दुर्मेधा: यया स्वप्नं भयं	हे पार्थ! दुष्टबुद्धि व्यक्ति जिस {विदेशी और विधर्मी धर्मानुकूल} धारणा से स्वप्न, भय,
शोकं विषादं च मदमेव	शोक, विषाद को और {देहभान के कारण} घमण्ड को भी {हठपूर्वक धारण करते हुए}
न विमुंचति सा तामसी धृति:	बिल्कुल नहीं छोड़ता, वह {महापापी कलहयुग के राक्षसी कर्म वाली} तामसी धारणाशक्ति है;

सुखं तु इदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ। अभ्यासात् रमते यत्र दु:खान्तं च निगच्छति।। 18/36

तु भरतर्षभ इदानीं त्रिविधं	किंतु हे भरतश्रेष्ठ! इस {पु. संगमयुग की चतुर्युगी शूटिंग में नं. वार} 3 प्रकार के
सुखं मे शृणु यत्र अभ्यासात्	सुख को मेरे से सुन, जिसमें {वैराग सहित निरंतर} योगाभ्यास से {परमसुख को}
रमते च दुःखान्तं निगच्छति	रमण करता है और दुःखों के अंत को {इसी पु.संगम के जन्म में भली-भाँति} पाता है।

यत् तत् अग्रे विषं इव परिणामे अमृतोपमं। तत् सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं आत्मबुद्धिप्रसादजं।। 18/37

यत्तदग्रे विषमिव परिणामे	जो वह {सुख} शुरू में विष-जैसा {असहनीय, कड़ुआ और दुखदाई लगे; किंतु} परिणाम में
अमृतोपमं तत् आत्मबुद्धि-	{सदा} अमृत के समान {महासुखदायी होता} है, वह आत्मिक {रूप में मन सहित} बुद्धि की
प्रसादजं सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं	खुशी से पैदा सुख {2500 वर्ष के स्वर्ग और नरक में भी} सात्विक कहा गया है।

विषयेन्द्रियसंयोगात् यत् तत् अग्रे अमृतोपमं। परिणामे विषं इव तत् सुखं राजसं स्मृतं।। 18/38

यत्तदग्रे विषयेन्द्रियसंयोगात्	जो {मायावी सुख} शुरू में विषयेन्द्रियों के संयोग से {क्षणभंगुर होते भी ऐसे भासे कि}
अमृतोपमं परिणामे विषमिव	अमृत के समान {लगे; किंतु} परिणाम में विष की {सीमाहीन मृत्युदुःख} जैसा
तत् सुखं राजसं स्मृतं	{अनुभव} हो, उस सुख को {द्वापुरादि से कलियुग-मध्य तक} राजसी माना गया है।

यत् अग्रे च अनुबन्धे च सुखं मोहनं आत्मनः। निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत् तामसं उदाहृतं।। 18/39

यदग्रे चानुबंधे आत्मनः	जो {नारकीय सुख} शुरू में व परिणाम में {भी} मन-बुद्धि {युक्त आत्मबिंदु} के लिए
मोहनं च निद्रालस्यप्रमादोत्थं	{बहुत} मोहित करने वाला तथा {परिणाम में} निद्रा, आलस्य एवं प्रमाद/लापरवाही से पैदा हो,
तत् सुखं तामसं उदाहृतं	वह {दिखावटी} सुख {अत्याचारी कलियुग में} तामसी, {राक्षसी वृत्ति का महादुखदाई} कहा गया है।

न तत् अस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः। सत्त्वं प्रकृतिजैः मुक्तं यत् एभिः स्यात् त्रिभिः गुणैः।। 18/40

प्रकृतिजैरेभिः त्रिभिर्गुणैर्मुक्तं	{इस अपरा} प्रकृति से उत्पन्न हुए इन तीनों गुणों से मुक्त {भूत, भविष्य और वर्तमान में}
यत्स्यात्तत् सत्त्वं पृथिव्यां	जो हो, वह प्राणी {या} पदार्थ {द्वापुर से विस्तृत 7 महाद्वीपी समूची} पृथ्वी में
वा दिवि वा देवेषु नास्ति	अथवा वैकुण्ठ धाम वा देवलोक में {भी} नहीं है। {वहाँ भी सत्त्व या सत्वप्रधान तो है ही।}

[41-48 फलसहित वर्णधर्म का विषय]

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप। कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैः गुणैः।। 18/41

परंतप ब्राह्मणक्षत्रियविशां च शूद्राणां	हे कामादिक शत्रुतापक! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- {वर्णों} के
कर्माणि स्वभावप्रभवैः गुणैः प्रविभक्तानि	कर्म {•शूटिंग में} आत्मभाव से पैदा हुए गुणों से प्रकृष्टतया बँटे हुए हैं।

•{'चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः';(गीता 4-13)} लेकिन यह कब की बात है? (पुरुषोत्तम संगमयुगी शूटिंग की।)

शमो दमः तपः शौचं क्षान्तिः आर्जवं एव च। ज्ञानं विज्ञानं आस्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजं।। 18/42

शमः दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवं	{चुप्पी रूप} मूकत्व, इन्द्रियदमन, {आत्मस्मृति का} तप, शुद्धता, शान्ति, सरलता,
ज्ञानं च विज्ञानं एवास्तिक्यं	{पंचानन ब्रह्मा से समझा} ज्ञान और योग, ऐसे ही आस्तिकता-{ये सभी सत्वगुणी}
स्वभावजं ब्रह्मकर्म	आत्मभाव से उत्पन्न {ऊर्ध्वमुखी} ब्रह्मा के कर्म हैं। {कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि 3/15}

शौर्यं तेजो धृतिः दाक्ष्यं युद्धे च अपि अपलायनं। दानं ईश्वरभावश्च क्षात्र कर्म स्वभावजं।। 18/43

शौर्यं तेजः धृतिर्दाक्ष्यं च युद्धे अपि	शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता और {भीषण} युद्ध में भी {विधर्मी कायरों-जैसा}
अपलायनं दानं च ईश्वरभावः	न भागना, दान और {गीता के राजयोग से प्राप्त} ईश्वरीय/शासकीय/राजाई-भाव-
क्षात्र कर्म स्वभावजं	{ये संगमयुगी शूटिंग के पुरुषार्थी} क्षत्रियों वाले स्वभाव से उत्पन्न {गुण} कर्म हैं।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजं। परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्य अपि स्वभावजं।। 18/44

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं स्वभावजं	खेती, गौरक्षा, व्यापार {आदि संगम में मानसी शूटिंग के विषियस} स्वभाव से उत्पन्न
वैश्यकर्म परिचर्यात्मकं	वैश्य-कर्म हैं। {चारों वर्णों की} चौतरफा नौकरी-चाकरी {सेवा-सुसूर्षा} करना
शुद्रस्यापि स्वभावजं कर्म	{चतुर्थ वर्णीय} शूद्रों के स्वभाव से पैदा हुए कर्म हैं। {जो पूर्वजन्मों से भी कल्प-कल्पान्तर जुड़े हुए हैं।}

स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तत् शृणु।। 18/45

स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः नरः	{तो भी} अपने-2 कर्मों से {पुरुषोत्तम संगमयुगी शूटिंग में} सदा लगा हुआ मनुष्य
संसिद्धिं लभते स्वकर्मनिरतः	सम्पूर्णसिद्धि {रूप वैकुंठ} पाता है। स्वकर्म में लगा हुआ {कोई भी वर्ण का पुरुषार्थी}
यथा सिद्धिं विन्दति तत् शृणु	जैसे {विष्णुलोकीय कलातीत अतीन्द्रिय सुख की} सिद्धि पाता है, उसे सुन।

यतः प्रवृत्तिः भूतानां येन सर्वं इदं ततं। स्वकर्मणा तं अभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।। 18/46

यतः भूतानां प्रवृत्तिः	जहाँ {पुरुषोत्तम संगम से} प्राणियों की {उत्पत्ति-चेष्टादि} क्रिया {की शूटिंग} होती है {और}
येन इदं सर्वं	जिस {यज्ञपिता} से यह सारा {मानवीय सृष्टिवृक्ष, सदा शिव ज्योतिसमान लिंग/बीज से}
ततं तं स्वकर्मणाभ्यर्च्य	विस्तृत हुआ है, उसकी अपने कर्म से अच्छे से अर्चना-{उपासना} कर {आज्ञाकारी बनते हुए}
मानवः सिद्धिं विन्दति	मनुष्य {संसार में जीवित रहते हुए भी जीवन्मुक्ति रूप विष्णुलोकीय वैकुण्ठ की} सिद्धि को पाता है।

श्रेयान् स्वधर्मः विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्। स्वभावनियतं कर्म कुर्वन् न आप्नोति किल्बिषं।। 18/47

परधर्मात् विगुणः स्वधर्मः स्वनुष्ठितात्	जड़ प्रकृति के {देहभान वाले} विरुद्ध गुण से आत्मधर्म सुख से पालने कारण
श्रेयान् स्वभावनियतं	श्रेष्ठ है। {कल्प-2 की 5000 वर्षीय चतुर्युगी की हूबहू शूटिंग में अपने} स्वभाव से नियत किए हुए
कर्म कुर्वन् किल्बिषं नाप्नोति	{किसी वर्ण के} कर्म करता हुआ {आत्मस्थिति में स्थिर रहने के कारण} पाप का भागी नहीं बनता।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषं अपि न त्यजेत्। सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेन अग्निः इव आवृताः।। 18/48

कौन्तेय सहजं कर्म सदोषमपि	हे कुन्ती-पुत्र! {जन्म-2 के संस्कारों में अभ्यासी होने से} सहज कर्म दोषयुक्त हो तो भी
न त्यजेत् हि धूमेन अग्निः इव	न त्यागना चहिए; क्योंकि धुएँ से अग्नि की तरह {इस नारकीय संसार के तो ब्राह्मण
सर्वारम्भा दोषेण आवृताः	आदि वर्णों के} सभी •कर्म दोष से ढके हुए हैं। {यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः (गी.3-9)}

•{"सब धंधों में है नुकसान, बिगर अविनाशी ज्ञान-रत्नों के धंधे के।" (मु.ता.2.12.68 पृ.1 अंत)}{रुद्रयज्ञ का धंधा ही सर्वश्रेष्ठ है।}{इस दुनिया के सारे धंधों का कारण है ही मूतपलीती कामविकार।}{यस्य सर्वे समारम्भा कामसंकल्पवर्जिताः। (गी. 4-19)}

[49-55 ज्ञाननिष्ठा का विषय।]

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः। नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेन अधिगच्छति।। 18/49

सर्वत्र जितात्मासक्तबुद्धिः	{इस नारकीय संसार की} सब परिस्थितियों में आत्मजयी, आसक्तिरहित बुद्धि वाला {व्यक्ति}
विगतस्पृहः संन्यासेन परमां	{जो मिले, जैसी 'यदृच्छालाभसंतुष्टो' (गी. 4-22) जैसा} कामनाहीन, समुचित त्याग से परमश्रेष्ठ
नैष्कर्म्यसिद्धिं अधिगच्छति	{जैसा} कर्मरहित {अतीन्द्रिय सुख से भरे कलातीत वैकुण्ठ की} सिद्धि को प्राप्त करता है।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथा आप्नोति निबोध मे। समासेन एव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।। 18/50

कौन्तेय सिद्धिं प्राप्तः यथा	हे {देहभान नाशिनी} कुन्ती-पुत्र! {स्वर्गीय} सिद्धि प्राप्त व्यक्ति जैसे {पहले-2 सर्व सामान्यात्माओं}
ब्रह्माप्नोति तथा ज्ञानस्य या	{के आत्मलोक} ब्रह्मलोक को पाता है, वैसे ही ज्ञान की जो {पु. संगमयुग में पुरुषार्थ से प्राप्त}
परानिष्ठा मे समासेनैव निबोध	पराकाष्ठारूप सर्वोच्च स्थिति {साक्षात् परंब्रह्म में होती} है, {वह} मेरे से संक्षेप में ही सुन।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्या आत्मानं नियम्य च। शब्दादीन् विषयान् त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।। 18/51

विशुद्धया बुद्ध्या युक्तः	{सच्चीगीता एडवांसज्ञान से} विशेष शुद्ध बुद्धि से {परमपिता+परमात्मा की} याद में मग्न व्यक्ति
धृत्या आत्मानं नियम्य शब्दादीन्	धैर्यपूर्वक {बार-2 याद के अभ्यास से} अपने मन को वश में करके शब्द {-स्पर्श} आदि {पाँचों}
विषयान् त्यक्त्वा च रागद्वेषौ व्युदस्य	विषयों को त्यागकर और {आत्मस्मृति से देहभान-निर्मित} राग-द्वेष को छोड़कर,

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः। ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।। 18/52

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः	{मन से भी} एकान्तप्रिय, अल्पाहारी, {श्रीमत से} मन-वचन-कर्म में मर्यादित,
नित्यं ध्यानयोगपरः	नित्य विचार-सागर-मंथन और परमात्म-योगयुक्त हुआ, {ढेरों बने पड़े बंबों से भस्मसात् होने वाली,
वैराग्यं समुपाश्रितः	यादवों से निर्मित मूसलों/मिसाइलों की पुरानी कलियुगी दुनियाँ से} वैराग्य का सम्पूर्ण आश्रय लेने वाला है।

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहं। विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। 18/53

अहंकारं बलं दर्पं कामं-क्रोधं	{विनाशी देह का} अहंभाव, {बाहु-} बल, घमंड, कामविकार, क्रोध {और लोभादि दूसरे रूप},
परिग्रहं विमुच्य निर्मम :	{भस्मसात् भविष्य-निर्वाह के मोह से बनी} संग्रह-वृत्ति को विशेषतः छोड़कर, ममताहीन,
शान्तः ब्रह्मभूयाय कल्पते	शांतचित्त हुआ {मेरे सर्वोत्तम हीरोपार्टधारी के} परमब्रह्मभाव के लिए समर्थ है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां।। 18/54

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति	{पु. संगम में ही संपन्न बने} परमब्रह्मभाव को प्राप्त प्रसन्नचित्त विप्र न शोक करता है, {और}
न कांक्षति सर्वेषु भूतेषु समः	न आकांक्षा करता है। {देहभान छोड़ आत्मस्टार-दृष्टि द्वारा} सब प्राणियों में समान भाव वाला
परां मद्भक्तिं लभते	मेरे परमश्रेष्ठ {सदा अव्यभिचारी बने चेतन ज्ञान-सागर की} श्रद्धा-भक्तिभाव का {संगम में भी} लाभ लेता है।

भक्त्या मां अभिजानाति यावान् यः च अस्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरं।। 18/55

ततः भक्त्या यः च	उस श्रद्धा भक्ति-भावना से {मैं} जो {सदाशिव ज्योति समान रथी विश्व-नवनिर्माणकर्ता हूँ} और
यावान् अस्मि मां तत्त्वतः	जैसा हूँ, {वैसा ही अनुभव से} मुझे तत्त्वपूर्वक {एडवांस सच्ची गीता 13-1 से 18 के अनुसार}
अभिजानाति मां तत्त्वतः	भली-भाँति जान जाता है {और} मुझ {शिव+बाबा} को {इसी कम्बाइंड रूप से} तत्त्वतः
ज्ञात्वा तदनन्तरं विशते	जानकर, तत्पश्चात् {सविशेष बीजरूप बनी रुद्रमाला के परंब्रह्मलोक में} प्रवेश पाता है।

[56-66 भक्तिसहित कर्मयोग का विषय]

सर्वकर्माणि अपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः। मत्प्रसादात् अवाप्नोति शाश्वतं पदं अव्ययं।। 18/56

सदा मद्व्यपाश्रयः सर्वकर्माणि	सदा मेरा ही विशेष आश्रय/आधार लेने वाला, {दसों इन्द्रियों के} सब प्रकार के कर्मों को
कुर्वाणोऽपि मत्प्रसादाच्छाश्वतं	करता हुआ भी, मेरी {साकारी सो निराकारी लिंगमूर्ति की} प्रसन्नता से चिरकालीन
अव्ययं पदं अवाप्नोति	अविनाशी {प्यूरिटी से यूनिटी की यादगार क्षीरशायी वैकुण्ठ के विष्णुरूप} परमपद को पाता है।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः। बुद्धियोगं उपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।। 18/57

सर्वकर्माणि चेतसा मयि संन्यस्य	सब {ज्ञान-कर्मेन्द्रियों के} कर्मों को मन-बुद्धिपूर्वक मुझ {लिंगमूर्ति} में समर्पण कर,
मत्परः बुद्धियोगं सततं	{एकमात्र} मेरे परायण {आधीन} हुआ {वैराग सहित} बुद्धियोग का निरन्तर {अभ्यासपूर्वक},
उपाश्रित्य मच्चित्तः भव	मेरे नज़दीक आश्रय लेकर {साकारी सो निराकारी महादेव स्वरूप} मेरे चित्तमग्न हो जा।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यसि। अथ चेत् त्वं अहङ्कारात् न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।। 18/58

मत्प्रसादात् सर्वदुर्गाणि तरिष्यसि	मेरी प्रसन्नता से {तन, मन, धनादि के} सब विघ्न रूप दुर्गों/रुकावटों को पार करेगा

अथ चेत् मच्चित्तः त्वं अहंकारात्	और यदि मेरे {बिंदु रूप} में {हठपूर्वक/जबरियन} चित्तमग्न हुआ तू अहंकार के कारण
न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि	{मेरी श्रेष्ठ मत भरी बातें} नहीं सुनेगा {तो तेरा विश्वनाथ का ऊँचा पद} सर्वथा नष्ट हो जाएगा।

यत् अहङ्कारं आश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे। मिथ्या एषः व्यवसायः ते प्रकृतिः त्वां नियोक्ष्यति।। 18/59

यत् अहंकारं आश्रित्य न योत्स्य	जो {वीरता के} अहंकार का आश्रय लेकर {मायावी अहिंसक} 'युद्ध नहीं करूँगा'-
इति मन्यसे ते एषः व्यवसायः मिथ्या	ऐसा {ही} मानेगा, {तो} तेरा यह सोचना {गीता 3-27;18-43 अनुसार} व्यर्थ है;
प्रकृतिः त्वां नियोक्ष्यति	{क्योंकि तेरी आत्मगत क्षत्रिय} प्रकृति तुझको {युद्ध में} अवश्य ही लगा देगी।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा। कर्तुं न इच्छसि यत् मोहात् करिष्यसि अवशः अपि तत्।। 18/60

कौन्तेय स्वभावजेन स्वेन कर्मणा	हे {दृढ़भान-नाशिनी} कुन्ती-पुत्र! {पुरुषोत्तम संगम की शूटिंग में} स्वभाव से पैदा अपने कर्म से
निबद्धः यन्मोहात् कर्तुं नेच्छसि	बँधा हुआ यदि {मोह की} मूर्खता से {मायावी अहिंसक युद्ध} करने का इच्छुक नहीं,
तदपि अवशः करिष्यसि	तो भी {'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं' (गी. 4-13) इस आत्म-रिकॉर्ड के} बरबस हुआ {अवश्य} करेगा।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। 18/61

अर्जुन सर्वभूतानां हृद्देशे ईश्वरः	हे अर्जुन! सब प्राणियों के {नं. वार} हृदय में ईश्वर {के •समान बना विश्वनाथ}
तिष्ठति यंत्रारूढानि	{योग-•ऊर्जा से स्वयं ही शासक बना} बैठा है। {सृष्टिचक्र के} चाक पर चढ़ाए हुए {पात्ररूप मूर्ति-जैसे}
सर्वभूतानि मायया भ्रामयन्	{ऊँचे-नीचे} सब प्राणियों को {योग-} माया {मंदिर-} द्वारा {कल्प-2} भ्रमित किया जा रहा है।

तं एव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत् प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतं।। 18/62

भारत तमेव सर्वभावेन	हे विष्णु/भरत-पुत्र! उस {जगत्पिता} को ही {जानकर} पूर्णभाव से {उस लिंगमूर्ति}

शरणं गच्छ तत्प्रसादात्परां	{की} शरण में चला जा। उसकी प्रसन्नता से {सत्य सनातन धर्म की अविनाशी} परम {श्रेष्ठ}
शान्तिं शाश्वतं स्थानं प्राप्स्यसि	शान्ति{&} चिरकालीन {विष्णु के कलातीत वैकुण्ठ रूप} परमपद को प्राप्त करेगा।

इति ते ज्ञानं आख्यातं गुह्यात् गुह्यतरं मया। विमृश्य एतत् अशेषेण यथा इच्छसि तथा कुरु।। 18/63

इति गुह्यात् गुह्यतरं ज्ञानं	ऐसे {ब्रह्मा के} गुप्त {बेसिक ज्ञान} से भी गुप्ततर {परंब्रह्मा का एडवांस} गीताज्ञान
मया ते आख्यातं एतत् अशेषेण	मैंने तुझे कहा है। इस पर पूरी तरह {गी. 4-34 के 'परिप्रश्नेन सेवया' अध्ययनरत हुआ}
विमृश्य यथा इच्छसि तथा कुरु	विचार कर, जैसा {दिल में} चाहे वैसा कर। {आत्मा अपना बंधु वा शत्रु स्वयं है।} (गी.6-5)

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। इष्टः असि मे दृढं इति ततो वक्ष्यामि ते हितं।। 18/64

भूयः सर्वगुह्यतमं परमं मे	पुनः सबसे अधिक रहस्यमय, {सभी धर्म-शास्त्रों से भी} परमश्रेष्ठ {इस गीता में} मेरे
वचः शृणु मे दृढमिष्टोऽसि	{सर्वोत्तम} वचनों को सुन; {क्योंकि} तू मेरा अत्यन्त प्रिय {एवरेस्ट चोटी जैसा ब्राह्मण} है;
इति ते हितं वक्ष्यामि	अतः तेरी भलाई की बात बताता हूँ; {क्योंकि राजयोग से विश्वविजयी तुझे होना है।}

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मां एव एष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियः असि मे।। 18/65

मन्मना भव मद्भक्तः मद्याजी	{हे अर्जुन! तू} मेरे में मन लगा। मेरा भक्त है। मेरे प्रति {अविनाशी रुद्र-} यज्ञसेवा कर।
मां नमस्कुरु मामेवैष्यसि ते सत्यं	मुझे नमन कर। {इससे तू पुरुषों में उत्तम आत्मा बन} मुझे अवश्य पाएगा। {मैं} तेरे से सत्य
प्रतिजाने मे प्रियः असि	प्रतिज्ञा करता हूँ {कि तू सच्चे मित्रवत} मुझे प्रिय है; {क्योंकि तू आदम/अर्जुन ही सृष्टिबीज है।}

सर्वधर्मान् परित्यज्य मां एकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। 18/66

सर्वधर्मान् परित्यज्य मां	सब {हिन्दू-मुस्लिमादि} धर्मों को पूरा ही त्यागकर, मुझ {अल्लाह अव्वलदीन माने गए}

एकं शरणं व्रज अहं त्वा सर्व	एक {शिवबाबा} की शरण में {आ} जा। मैं तुझे {धर्मरक्षार्थ हिंसा के पूर्वकृत} सब
पापेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शुचः	पापों से मुक्त कर दूँगा। {तू} शोक मत कर {कि धर्मी-विधर्मी-अधर्मी सब बेमौत मरेंगे।}

[67-78 श्रीगीताजी का माहात्म्य]

इदं ते न अतपस्काय न अभक्ताय कदाचन। न च अशुश्रूषवे वाच्यं न च मां यः अभ्यसूयति।। 18/67

अतपस्काय अभक्ताय	जिस व्यक्ति में {अणुरूप ज्योतिबिंदु आत्म-स्मृति का} तप न हो, जो {नार+द जैसा} अंधश्रद्धालु भक्त हो,
अशुश्रूषवे च यः मां	{अविनाशी अश्वमेध रुद्रयज्ञ का} सेवाभावी न हो और जो मुझ {परमपिता शिव समान बने जगत्पिता} से
अभ्यसूयति इदं ते कदाचन न वाच्यं	{नास्तिकों-जैसा} ईर्ष्यालु हो, {उसे} यह {गीता-ज्ञान} तू कभी भी मत बताना।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेषु अभिधास्यति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मां एव एष्यति असंशयः।। 18/68

यः इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेषु	जो इस परम रहस्यमय {ज्ञान को} मेरे {भावभरे श्रद्धायुक्त} भक्तों में
अभिधास्यति मयि परां भक्तिं	सुनाएगा, {वह} मेरी परमश्रेष्ठ {द्वापुरादि वाले सोमनाथ महादेव की अव्यभिचारी} भक्ति
कृत्वा असंशयः मामेवैष्यति	करके बिना संशय के मुझ {1 शिव+बाबा विश्वनाथ} को ही प्राप्त होगा। {गीता 7-23}

न च तस्मात् मनुष्येषु कश्चित् मे प्रियकृत्तमः। भविता न च मे तस्मात् अन्यः प्रियतरो भुवि।। 18/69

मनुष्येषु कश्चिन्मे तस्मात्	मानवों में कोई {भी} मेरा उस {साकार रथी सो निराकार शिवज्योति समान}
प्रियकृत्तमः न च भुवि मे	प्रिय कर्मकर्ता नहीं है और विश्व में {जो 1 जगत्पिता महादेव की मूर्ति है}, मुझे
तस्मादन्यः प्रियतरः न भविता	उस {आदम} के अलावा {कभी} कोई दूसरा {व्यक्ति} अधिक प्रिय न {हुआ} है, न होगा।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादं आवयोः। ज्ञानयज्ञेन तेन अहं इष्टः स्यां इति मे मतिः।। 18/70

य आवयोः इमं धर्म्यं संवादं	जो {कोई} हम दोनों {शिव+अर्जुन/आदम} के इस धारणायोग्य वार्तालाप {एडवांस ज्ञान} का
अध्येष्यते तेन ज्ञानयज्ञेन	{लगन से} अध्ययन करेगा, उस {महारुद्र} के ज्ञानयज्ञ {की श्रेष्ठतम मनसा+वाचा सेवा} द्वारा
अहं इष्टः स्यां इति मे मतिः	मैं {उस नं. वार बनी शिव की अष्टमूर्ति-संघ का} प्रिय बनूँगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

श्रद्धावान् अनसूयश्च शृणुयात् अपि यो नरः। सः अपि मुक्तः शुभान् लोकान् प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणां।। 18/71

यः श्रद्धावाननसूयः च नरोऽपि	जो श्रद्धावान व ईर्ष्यारहित मनुष्य {समूचे वार्तालाप सहित एडवांस गीता ज्ञान को} केवल
शृणुयात्सोऽपि मुक्तः पुण्यकर्मणां	सुन• लेता है, वह भी {दुःखों से} मुक्त हुआ {श्रेष्ठतम स्वर्ग का} पुण्यकर्मी
शुभान् लोकान् प्राप्नुयात्	{नौ नाथ/रुद्राक्ष-बीजरूप बापों के} शुभ {क्षीरसागरीय विष्णु-} लोकों को पा लेता है।

{•मेरे (पंचम ऊर्ध्वमुखी ब्रह्मा-) मुख से दो अक्षर भी सुना तो वह भी स्वर्ग में जरुर आवेंगे। (मु.ता.2.3.68 पृ.3 आदि)}

कच्चित् एतत् श्रुतं पार्थ त्वया एकाग्रेण चेतसा। कच्चित् अज्ञानसम्मोहः प्रनष्टः ते धनञ्जय।। 18/72

पार्थ कच्चित्त्वया एकाग्रेण चेतसा	हे पृथ्वीपति! {नर अर्जुन/आदम/एडम!} क्या तूने एकाग्र चित्त से {नित्य नियम से}
एतत् श्रुतं धनंजय कच्चित्ते	यह {एडवांस सच्चीगीता का ज्ञान} सुना? हे ज्ञानधनजेता! क्या तेरा {2500 वर्षों से}
अज्ञानसंमोहः प्रनष्टः	{अंधश्रद्धायुक्त धर्मशास्त्रों की सुनी-सुनाई} बेसमझी से हुआ सारा मोह पूर्णतः नष्ट हुआ?

अर्जुन उवाचः-नष्टो मोहः स्मृतिः लब्धा त्वत्प्रसादात् मया अच्युत। स्थितः अस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। 18/73

अच्युत त्वत्प्रसादान्मोहः नष्टः	हे अच्युत! {अमोघवीर्य, पुरुषोत्तम युग के मूर्धन्य} आपकी प्रसन्नता से मोह नष्ट हुआ,
स्मृतिः लब्धा गतसंदेहः स्थितः	{मेरे में प्रविष्ट (11-54) हुए आपकी} स्मृति प्राप्त हुई। संदेहरहित होकर {मन से} स्थिर हुआ

अस्मि तव वचनं करिष्ये	हूँ। {ऊर्ध्वमुखी परंब्रह्म से निकली} आपकी आज्ञा का {भरपूर तरीके से} पालन करूँगा।

संजय उवाचः-इति अहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः। संवादं इमं अश्रौषं अद्भुतं रोमहर्षणं।। 18/74

इत्यहं वासुदेवस्य च पार्थस्य महात्मनः	ऐसे मैंने वासुदेव के और {ज्ञानभंडारी शिवपुत्र} भूपति महात्मा अर्जुन के
अद्भुतं रोमहर्षणं इमं संवादं अश्रौषं	अद्भुत, रोमांचित करने वाले इस संवाद को {सूक्ष्म शरीर से} सुना है।

व्यासप्रसादात् श्रुतवान् एतत् गुह्यं अहं परं। योगं योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात् कथयतः स्वयं।। 18/75

व्यासप्रसादादेतत् गुह्यं परं	व्यास {जो द्वापुर से इसी काम से विशेष बैठा था} की प्रसन्नता से यह रहस्यमय सर्वोत्तम
योगं अहं स्वयं साक्षात् कृष्णात्	{सहजराज} योग मैंने स्वयं साक्षात् {ज्ञान-योग की उत्कृष्ट, अव्यक्त} आकर्षणमूर्त से,
योगेश्वरात्कथयतः श्रुतवान्	योगियों के ईश्वर {सनत्कुमार} द्वारा कहते हुए {अपने सूक्ष्मशरीर के कानों से} सुना है।

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादं इमं अद्भुतं। केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः।। 18/76

राजन् केशवार्जुनयोरिमं	हे {पूंजीवादी} राजा! ब्रह्मा के स्वामी {शिवबाबा} व अर्जुन के ऐसे इस
अद्भुतं च पुण्यं संवादं	{सृष्टि में सर्वप्रथम सुने-सुनाए गए} आश्चर्यजनक और पवित्र संवाद को
संस्मृत्य-2 मुहुर्मुहुः हृष्यामि	बार-2 याद करके {मैं अभी पु.संगम की अभूल यादों में} पुनः पुनः हर्षित हो रहा हूँ।

तत् च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपं अत्यद्भुतं हरेः। विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः।। 18/77

च राजन् हरेः तत्	और हे {नोटों से वोटों के} राजा धृत+राष्ट्र! विष्णुरूप उस {अश्वत्थ बड़वृक्ष के}
अत्यद्भुतं रूपं संस्मृत्य-2	अति आश्चर्यजनक {विराट} रूप {अर्धनारीश्वर} को {सच्चीगीता के ज्ञान द्वारा} बार-2 याद करके
मे महान् विस्मयश्च पुनः-2 हृष्यामि	मुझको {ये अजूबा देख} महान विस्मय होता है और {मैं} बार-2 हर्षित हो रहा हूँ।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीः विजयो भूतिः ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।। 18/78

यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र	जहाँ योगियों के ईश्वर आकर्षणमूर्त {शिवबाबा} हों, जहाँ {साकारी मानव-सृष्टि-बीज/बाप}
धनुर्धरः पार्थो	{रामायण में "शंकर चाप जहाज, जेहि चढ़ि उतरहिं पार नर" वाले} धनुर्धर राजा {विश्वनाथ} हों,
तत्र श्रीः विजयः भूतिः	वहाँ श्रेष्ठतम विश्व-विजय रूप विभूति, {जो किसी विधर्मी-विदेशी ने नहीं पाई,}
ध्रुवा नीतिर्मम मतिः	{वही सदाविजयी आदि ना. की} अटल राजनीति है, {ऐसी} मेरी मान्यता है।